वेशभूषा शालीन ही रखिए
-श्रीराम शर्मा आचार्य

वेशभूषा शालीन ही रखिए

हमारा स्वास्थ्य जिस प्रकार आहार पर निर्भर है, उसी प्रकार वस्त्रों-पोशाकों का भी उस पर काफी प्रभाव पड़ता है, पर लोगों ने इस समय इस दृष्टिकोण को बिल्कुल भुला रखा है। वे पोशाक का उद्देश्य लज्जा निवारण या शान-शौक मात्र समझते हैं। अब तो धीरे-धीरे यह मानव-जीवन का ऐसा अविच्छिन्न अंग बन गई है कि हम वस्त्रहीन मनुष्य की कल्पना भी नहीं कर सकते। अधिकांश लोग तो इसे इतना ज्यादा महत्व देते हैं और ऐसा अनिवार्य समझते हैं मानो मनुष्य वस्त्रों सहित ही पैदा हुआ है और उनके बिना उसका अस्तित्व ही नहीं रह सकता।

पर सच तो यह है कि मनुष्य नंगा ही पैदा हुआ है और हजारों वर्ष तक यह उसी दशा में प्रकृति माता की गोद में निवास कर चुका है। उस समय उसका चमड़ा भी कुछ कड़ा था। बहुत अधिक ठण्डे स्थानों के निवासी चाहे शीत के प्रकोप से बचने के लिए भालू आदि जैसे किसी पशु के चर्म का उपयोग भले ही कर लेते हों, अन्यथा उस युग में सभी मनुष्य दिगम्बर अवस्था में ही जीवन यापन करते थे। फिर जैसे-जैसे रहन-सहन के परिवर्तन से शारीरिक अवस्था में अन्तर पड़ता गया और लिंग-भेद (सैक्स) सम्बन्धी मनोवृत्तियाँ वृद्धि पाती गयीं, मनुष्य लँगोटी, कटि-वस्त्र आदि पहनने लग गये।

जब जीवन-निर्वाह के साधन बढ़ गये और अनेक लोग अपेक्षाकृत आलस्य का जीवन व्यतीत करने लगे तो ठण्डे देशों में उनको देह की रक्षा के लिए किसी प्रकार के वस्त्र पहिनने की आवश्यकता जान पड़ने लगी। धीरे-धीरे यह प्रवृत्ति बढ़ती गई और आज पोशाक ने सजावट और शौक का ही नहीं, मान-मर्यादा का रूप भी ग्रहण कर लिया है। वस्त्रों से मनुष्य के छोटे बड़े, गरीब-अमीर होने का पता लगता है। इतना ही नहीं मनुष्य के धर्म, देश तथा जाति की बहुत कुछ जानकारी पोशाक द्वारा हो जाती है। मजदूर, दफ्तरों के क्लर्क, व्यापारी आदि की पहिचान भी प्रायः उनके कपड़ों से की जा सकती है। इस समय एक दृष्टि से पोशाक का यह रिवाज मनुष्य के जीवन में ऐसा घुल-मिल

गया है कि आरोग्य की दृष्टि से उस पर निरपेक्ष भाव से विचार कर सकना बड़ा कठिन है ।

योरोप का नग्न सम्प्रदाय

इस समय में भी दुनियाँ में ऐसे लोग हैं जो हर प्रकार के वस्त्रों का प्रयोग अनावश्यक और हानिकारक समझते हैं और सर्वथा नग्न रहना ही सर्वोत्कृष्ट बतलाते हैं । कौतूहल की बात यह है कि ये जंगली या अर्द्ध–सभ्य जातियों के लोग नहीं हैं, वरन् योरोप–अमेरिका के ज्ञान–विज्ञान की शिक्षा प्राप्त तथा पूर्ण विचारशील व्यक्ति हैं । उनका कथन है कि प्रकृति ने मनुष्य को नंगा ही पैदा किया है और उसका शारीरिक तथा मानसिक विकास सदैव इसी अवस्था में रहने से जितना अधिक हो सकता है, उतना वस्त्रों से ढके–दबे रहने में कभी नहीं हो सकता । जर्मनी में तो सौ वर्ष पूर्व ऐसे विचार वालों की संख्या इतनी बढ़ गई थी कि उन्होंने अपनी अलग बस्तियाँ बना ली थीं, जिनमें सैकड़ों या हजारों स्त्री–पुरुष बिल्कुल नग्न अवस्था में रहते थे । जब वे लोग कार्यवश उस बस्ती से बाहर शहर या कस्बों में जाते थे तो शरीर पर एक लम्बा–सा कुरता या चोगा पहन लेते थे, पर भीतर नंगे ही रहते थे ।

इन लोगों ने अपना एक पृथक् सिद्धान्त ही चला दिया था, जिसका नाम 'न्यूडिजम' था । पिछले सौ वर्षों में इसका प्रचार अनेक छोटे–बड़े देशों में न्यूनाधिक परिमाण में हो गया था, और अनेक लोग निजी निवास स्थानों के भीतर काफी समय तक नंगे रहते थे । योरोपीय देशों में नग्नता सभ्यता के विरुद्ध मानी जाती है और वहाँ यदि कोई सार्वजनिक स्थानों में नग्न होकर निकले तो वह राजकीय कानून से दण्डित होता है । इसलिए यह सम्प्रदाय सामान्य जनता में अधिक प्रगति न कर सका और जर्मनी के सिवाय अन्य देशों में विचार क्षेत्र के अतिरिक्त व्यावहारिक रूप में उसका बहुत ही कम प्रचार हो सका ।

दर्शकों ने ऐसे लोगों की बस्तियों के जो वर्णन लिखे हैं, उससे ऐसा प्रतीत होता है कि ये लोग प्रायः उच्चकोटि के विद्वान् या विचारक नहीं होते थे वरन् सामान्य कोटि के व्यक्ति ही होते थे जो नग्नवाद के तर्कों से प्रेरित होकर भावुकता या सनक के वशीभूत होकर उनमें

सम्मिलित हो जाते थे । इन लोगों में एक बड़ा भाग ऐसे व्यक्तियों का भी होता था जो बीच-बीच में कुछ दिनों के लिए उन बस्तियों में जाकर नग्नावस्था में रहते थे और फिर नगरों में लौटकर सामान्य अवस्था में रहकर अपना धन्धा, रोजगार करते थे । जहाँ तक विदित हुआ है इस सम्प्रदाय का उद्देश्य परोक्ष रूप से व्यभिचार या दुराचार को उत्तेजना देना नहीं था जैसा हमारा देश 'वाममार्ग-भैरवीचक्र' आदि के लिए प्रसिद्ध है । ये लोग मुख्यतः स्वास्थ्य संवर्धन की दृष्टि से ही इस प्रकार का आचरण करते थे ।

प्राकृतिक चिकित्सा के अनुयायियों की सम्मति

प्राकृतिक चिकित्सा के ग्रन्थों में वस्त्रों की पूर्ण सादगी पर बल दिया है-कहा है कि वस्त्र यथासम्भव कम और हलके होने चाहिए, जिससे बदन को वायु और प्रकाश मिलता रहे, क्योंकि मनुष्य का चर्म भी प्राणप्रद वायु को भीतर खींचता और दूषित तत्वों को बाहर निकालता रहता है । इससे शारीरिक विकारों की बहुत कुछ शुद्धि हो जाती है और शारीरिक अंगों की कार्यक्षमता में वृद्धि होती है, पर जो लोग फैशन के खयाल से एक के ऊपर एक कई कपड़े पहनते हैं अथवा ठण्ड से डरकर मोटे-मोटे ऊनी-सूती बनियान, जर्सी, कमीज, कोट, ओवरकोट आदि लादे रहते हैं, वे वायु-मण्डल में व्याप्त प्राण शक्ति से बहुत कुछ वंचित ही रह जाते हैं । जो लोग शौक या दिखावे के लिए बहुत चिकने, चमकीले कपड़े पहनने की हिर्स करते हैं उनके बदन में बाहर की हवा बिल्कुल नहीं लग पाती और शरीर के भीतर से जो विकार निकलते हैं वे चर्म पर ही सूखकर तरह-तरह के दोष उत्पन्न करते हैं । इस दृष्टि से विचार करते हुए एक लेखक ने उपयोगी ढंग के वस्त्रों का विवेचन करते हुए कहा है-

'यह बात बड़े महत्व की है कि हम ऐसे कपड़े पहिनें और उन्हें इस तरह से बनवायें कि जहाँ तक हो सके अधिक हवा और रोशनी शरीर तक पहुँचती रहे । खाल में होकर जो दूषित पदार्थ शरीर से बाहर निकलते रहते हैं और शुद्ध वायु छिद्रों में प्रवेश करती है, उस क्रिया में बाधा न पड़े । अतएव हमारे वस्त्र, ढीले, पतले व जालीदार

होने चाहिए । आजकल बाजार में बहुत से इस प्रकार के कपड़े बिकते हैं जो जालीदार व पतले होते हैं । जैसे डोरिया, तनजेब, मलमल, खादी आदि । इनमें से हर मनुष्य अपनी परिस्थिति के अनुसार कम या ज्यादा कीमत के वस्त्र खरीद सकता है । ध्यान यह रहना चाहिए कि ऐसे कपड़े न खरीदे जायें जिनसे प्रकृति के उद्देश्य को हानि हो या परिवार पर बुरा असर पड़े । पोशाक न केवल जालीदार और पतली हो बल्कि ढीली भी होनी चाहिए । ऐसी पोशाक हरगिज न पहिनी जाय जो बहुत चुस्त और कसी हुई हो जैसे चूड़ीदार पायजामा या बिरजिस या तंग बनियान आदि । ये शरीर को अपार हानि पहुँचाते हैं । हमको झूँठे फैशन या रूढ़ियों का गुलाम न बन जाना चाहिए और न बहुत अधिक मूल्य वाले वस्त्रों में धन नष्ट करना चाहिए । हमको अपनी स्थिति के अनुसार प्रकृति के उद्देश्यों के अनुकूल वस्त्रों का उपयोग करना चाहिए ।

बहुत से लोग कहते हैं बारीक कपड़े पहिनने वाले नाजुक हो जाते हैं, यह बड़ी भूल है । मोटे कपड़े पहिनने से कोई बलवान् नहीं बन सकता । बात यह है कि कुछ लोग मोटे और भारी वस्त्र बरदास्त कर सकते हैं और कुछ नहीं कर सकते । यह बात अपनी–अपनी इच्छा और आदत पर निर्भर है, आजकल अनेक प्रकार के कपड़े चल रहे हैं । जिनमें बहुत–सी त्रुटियाँ हैं । हमारी सम्मति में ऊनी बनियान और बुशशर्ट या रुई की बण्डी आदि बहुत हानिकारक हैं, क्योंकि ठीक खाल के पास ऊन या रुई का रहना बुरा असर डालता है । इससे खाल नाजुक व कमजोर हो जाती है ।

तंग और कसे हुए वस्त्र पहिनने से दो प्रकार की हानियाँ विशेष रूप से होती हैं । एक तो उनके कारण त्वचा का मैल बाहर निकलने में बाधा पड़ती है और चर्म रोगों की वृद्धि होती है और दूसरे रक्त–संचार में विकृति उत्पन्न होती है । रक्त–वाहिनी नालियाँ त्वचा के पास तक आती हैं और उनमें अवाध गति से शुद्ध रक्त–संचारित होने से ही हमारा स्वास्थ्य सुदृढ़ रहता है, पर अनुपयुक्त वस्त्रों से दबाव पड़कर खून का दौरा उचित वेग के साथ नहीं हो पाता जिससे शरीर में जड़ता, शिथिलता, कार्यक्षमता की कमी आदि दोष उत्पन्न होते हैं ।

कृत्रिम वस्त्रों के दोष

आज कल रायन (नकली रेशम), प्लास्टिक आदि रासायनिक पदार्थों के द्वारा जो वस्त्र बनाये जाते हैं, वे इस दृष्टि से और भी आपत्तिजनक हैं । उसमें वायु जाने का गुण बिल्कुल ही नहीं होता या नाम–मात्र को होता है । ऐसे वस्त्रों से गर्मियों में प्रायः इतना पसीना आता है कि तबियत परेशान हो जाती है । कितने ही तरह के कपड़ों का मसाला भी ऐसा दोषपूर्ण होता है कि उससे अनेक प्रकार के चर्मरोग उत्पन्न हो जाते हैं और स्वास्थ्य पर कुप्रभाव पड़ता है । प्लास्टिक के बने कलाई घड़ियों के स्ट्रैप के प्रयोग करने से कितने ही लोगों के हाथ में सफेद दाग पड़ जाता है । जब इस तरह की बहुत शिकायतें हुईं तो अब प्रचार कुछ कम हो गया है और धातु के बने 'स्ट्रैप' काम में लाये जाने लगे हैं ।

रासायनिक प्रक्रियाओं से बने कपड़े बहुत ज्वलनशील होते हैं । वे जरा–सी अग्नि की लौ का स्पर्श पाते ही भक् से जल उठते हैं और फिर किसी तरह जल्दी नहीं बुझाये जा सकते । मशाले के पिघल जाने से वे जलने के साथ ही शरीर से चिपक जाते हैं, जिससे मनुष्य की प्राण रक्षा असम्भव हो जाती है । आजकल इस प्रकार की दुर्घटनाओं में स्त्रियों के जलकर मरने की खबरें बहुत अधिक आने लगी हैं, क्योंकि ऊपरी चमक–दमक के कारण इन वस्त्रें का प्रचार दिन दूना बढ़ता जा रहा है और बड़े घरों की महिलाऐं ही नहीं साधारण श्रेणी की स्त्रियाँ भी बड़ों का अनुकरण करने के लालच में इसी तरह के अधिक मूल्य वाले कपड़ों का प्रयोग करने लगी हैं । अभी कुछ ही समय पहले का समाचार है कि एक नव–विवाहिता वधू ने चाय के लिए स्टोव जलाया । स्टोव में भटाका हो जाने के कारण नाइलोन की साड़ी ने तुरन्त आग पकड़ ली और बहू जलने लगी । उसकी चीख–पुकार सुनकर पति आकर आग को बुझाने लगा । अज्ञानवश वह भी वैसे ही कपड़े पहने था और उनमें भी तुरन्त आग लग गई । दोनों बुरी तरह जल गये और दो दिन के भीतर दोनों का देहावसान अस्पताल में हो गया ।

पश्चिमी फैशन की नकल

हमारा देश डेढ़ सौ वर्ष अंग्रेजों की अधीनता में रहा है और उस बीच में उनकी श्रेष्ठता की छाप हमारे मन पर इतनी अधिक पड़ गई है कि यहाँ के लाखों-करोड़ों व्यक्ति अंग्रेजी पोशाक का पहिनना बड़प्पन, सौभाग्य का चिन्ह समझने लग गये । एक समय था कि हर एक कोट-पैण्टधारी को उच्च अधिकारी और प्रभावशाली समझा जाता था और छोटे-मोटे लोग उसे दूर से ही सलाम करते थे । इस परिस्थिति में अयोग्य लोगों में भी उनकी नकल करने की इच्छा होती थी ताकि पोशाक के जोर से वे भी थोड़े-बहुत अंशों में अनजान व्यक्तियों की निगाह में प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकें

धीरे-धीरे यह मनोवृत्ति सर्वासाधारण में जड़ जमाती गई और आज यह स्थिति आ गई है कि अंग्रेजों का राज्य खत्म हो जाने पर भी उनकी पोशाक का प्रचार घटने के बजाय बढ़ता ही जाता है । हम ठीक हिसाब तो नहीं बतला सकते, पर इतना अनुमान अवश्य है कि अंग्रेजी राज्य के समय जितने भारतवासी विदेशी पोशाक पहनते थे, आज उनकी संख्या दुगुनी अवश्य हो गई है । पहले कुछ ज्यादा पढ़े-लिखे लोग, अधिक वेतन पाने वाले सरकारी कर्मचारी या सरकारी कार्यों से निजी सम्बन्ध रखने वाले ठेकेदार आदि कोट-पैण्ट का ज्यादा उपयोग करते थे, पर अब सामान्य वेतन पाने वाले कर्मचारी, दफ्तरों में क्लर्क और हल्के काम करने वाले मजदूर तक पैण्ट-बुशशर्ट काखुलकर प्रयोग करने लग गये हैं । यद्यपि कपड़ा और सिलाई की दृष्टि से पैण्ट का खर्च धोती अथवा पाजामा की अपेक्षा बहुत अधिक बैठता है और उसमें उठने-बैठने की भी असुविधा रहती है, पर लोगों पर फैशन का भूत ऐसा सवार हुआ है कि वे खर्च, कठिनाई और विदेशीपन का कुछ भी विचार न करके उसी के पीछे लगे हुए हैं ।

इस प्रकार की फैशन-प्रियता का एक नमूना कुछ वर्ष पहले देखने में आया था जब कम उम्र के लड़के ही नहीं बड़ी आयु के जवान और शिक्षित लोग भी सिनेमा के दृश्यों अथवा अभिनेता और अभिनेत्रियों के चित्रों वाले कपड़े पहिनने लग गये थे । कपड़ों के

कारखाने वाले तो लोगों की रुचि और धुन की परख करते हैं और अपना व्यापार बढ़ाने के लिए नये–नये फैशन के वस्त्र निकाला ही करते हैं। उन्होंने लोगों की इस मूर्खतापूर्ण सनक–का खूब लाभ उठाया और दो–चार वर्ष बाजारों में ऐसे चित्रदार कपड़े खूब बिकते रहे और लोग इस उपहासास्पद पोशाक को बड़ी शान और शौकत समझकर काम में लाते रहे।

हमको यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि पोशाक का राष्ट्रीयता से भी घनिष्ठ सम्बन्ध है। वस्त्रों से मनुष्य की जाति और देश का प्रकटीकरण होता है और जिन लोगों को अपनी जातीयता का अभिमान होता है, वे पोशाक की रक्षा प्राणपण से करते हैं। हमारे तो देशवासी इस तथ्य को भूलकर अंग्रेजी फैशन का अन्धानुकरण करते हैं। उनको यह पता नहीं कि स्वयं अंग्रेज अपनी राष्ट्रीय पोशाक के विषय में कितने दृढ़ हैं ? यह सभी जानते हैं कि भारत वर्ष इंग्लैण्ड की अपेक्षा बहुत कुछ गर्म देश है और इसीलिए यहाँ की संस्कृति में वस्त्रों का प्रयोग कम ही करने को अच्छा बतलाया गया है। यहाँ शरीर पर केवल दुपट्टा (उत्तरीय वस्त्र) डालकर बड़े–बड़े उत्सवों–समारोहों में भाग लेना भी हीनता का चिन्ह नहीं माना जाता। पर्वोत्सवों में तो आचार्य पुरोहित आदि पूजनीय व्यक्ति अनिवार्य रूप से केवल दो वस्त्र खण्डों का ही उपयोग करते हैं। इसका एक बड़ा कारण यही है कि इस देश की गर्म जलवायु में अधिक वस्त्रों का पहनना अनुपयोगी और असुविधाजनक ही सिद्ध होता है।

पर इंग्लैण्ड की दशा इससे बिल्कुल भिन्न है। वह शीत प्रधान देश है और वहाँ वर्ष के अधिकांश महीनों में ठण्ड से बचने के लिए कई ऊनी कपड़े एक के ऊपर एक पहिनते हैं। सबसे नीचे बनियान, फिर कमीज, वास्कट (वेस्कोट) और कोट की वहाँ सामान्य पोशाक है। जब बहुत अधिक ठण्ड पड़ती है तो ऊपर से ओवरकोट और पहिन लेते हैं। इंग्लैण्ड में तो यह आवश्यक और उपयोगी ही है, पर भारतवर्ष की आव–हवा में खासकर गर्मी की ऋृतु में इतने वस्त्रों की कदापि आवश्यकता नहीं वरन् सबसे बड़ी परेशानी होती है। अंग्रेज लोग अपनी राष्ट्रीयता के ख्याल से इस देश में रहते हुए भी गर्मी का कष्ट

सह लेते थे, जब बहुत अधिक असुविधा होती थी तो ठण्डे पहाड़ी स्थानों में चले जाते थे, पर कभी यह नहीं सोचते थे कि आव–हवा के अनुकूल भारतीय पोशाक को काम में लाने लगें ।

इस सम्बन्ध में हमको एक घटना का स्मरण हो आता है । बंगाल में जिन दिनों राजनैतिक आन्दोलन तेजी से फैला हुआ था लार्ड कारमाइकेल वहाँ के गवर्नर होकर आये । वे स्वभाव से ही बड़े सज्जन और बंगाल के राजनैतिक असन्तोष को कम करने के लिए उन्होंने भारतवासियों के साथ खूब मिल–जुलकर रहना और प्रेमयुक्त व्यवहार करना आरम्भ कर दिया । इसके परिणामस्वरूप उनका अनेक उच्च श्रेणी के भारतीयों से घनिष्ठ सम्बन्ध और मित्रता हो गई । एक बार जब गर्मी बहुत अधिक पड़ रही थी, एक भारतीय सज्जन उनसे मिलने गये । उन्होंने देखा कि गर्मी की अधिकता से वे बहुत परेशान थे और खस की टट्टी, पंखा आदि की व्यवस्था होने पर भी कलकत्ते की गर्मी में व्याकुलता अनुभव कर रहे थे । उन भारतीय सज्जन ने इस विषय की चर्चा छिड़ने पर कहा कि–आप लोग तो गर्मी में इतने अधिक कपड़े क्यों पहिने रहते हैं ? अगर आप भारतवासियों की तरह कुर्त्ता–धोती जैसी हल्की पोशाक पहिन लेते तो गर्मी का इतना कष्ट न सहना पड़ता । लार्ड कारमाइकेल ने इस बात पर कुछ असन्तुष्ट होने का भाव प्रकट करते हुए कहा–"क्या करें हम मूर्ख हैं, जो इतनी गर्मी में भी इतने वस्त्र पहिने रहते हैं ।" इसका आशय यही था कि यह हमारी जातीय पोशाक है । इसी को देखकर लोग हमको अंग्रेज जान लेते हैं । अगर हम दूसरे देश की पोशाक धारण करने लगें तो हमारी जातीयता की पहिचान और रक्षा कैसे हो सकेगी ? इसीलिए हम गर्मी का कष्ट सहन कर लेते हैं, पर अपनी पोशाक को नहीं त्यागते । इसके विपरीत हमारे देशवासी क्या देश और क्या विदेश, हर जगह कोट–पैण्ट की विदेशी पोशाक में रहना ही शान समझते हैं । इस नकलचीपन के लिए एकाध बार उनको राष्ट्र संघ की बैठकों में भी टोका गया है कि क्या आपकी अपनी राष्ट्रीय पोशाक और राष्ट्रीय भाषा नहीं है ।

हमारे देश में भी ऊँचे दर्जे के विद्वान और विचारक हुए हैं, वे

भारतीय परिधान की महत्ता को समझने वाले और उसकी रक्षा करने वाले हुए हैं । इस विषय में पं. ईश्वरचन्द्र विद्यासागर का उदाहरण बड़ा अनुकरणीय है । वे बंगाल में शिक्षा विभाग के एक उच्च पद पर नियुक्त कर दिये गये थे, जिसके कारण उनको प्रायः बड़े अंग्रेज अधिकारियों से मिलना–जुलना पड़ता था । बंगाल के गवर्नर के पास भी वे प्रायः जाया करते थे और गवर्नर साहब, गुणों के कारण उनका बड़ा सम्मान भी करते थे, पर एक बड़े अफसर होते हुए भी वे सदा अपनी ठेठ देशी पोशाक बगलबन्दी और धोती पहिनकर रहते थे । एक बार यह कायदा बना दिया गया कि गवर्नर साहब के पास कोई देशी पोशाक में न जाय, वहाँ कोट–पैण्ट पहिन कर जाना ही आवश्यक है । जब विद्यासागर जी को इस नियम की सूचना मिली तो वे गवर्नर साहब के पास पहुँचे और उनसे कहा कि–"मैं आज अन्तिम बार आपके पास आया हूँ । अब मैं सरकारी नौकरी नहीं कर सकूँगा ।" गवर्नर साहब ने कुछ आश्चर्य प्रकट करते हुए इसका कारण पूछा तो उन्हें स्पष्ट कह दिया कि–"किसी दशा में अपनी स्वदेशी पोषाक को नहीं छोड़ सकता और आपके यहाँ कोट–पैण्ट पहिन कर आने का नियम बना दिया गया है । इसलिए आपके यहाँ मेरा आ सकना और अपने कर्तव्यों को पूरा करते रह सकना असम्भव हो जायगा ।" लार्ड साहब उनके जातीय अभिमान के भाव के देखकर बहुत प्रसनन हुए और आज्ञा दे दी कि उक्त नियम आप पर लागू नहीं होगा, आप पूर्ववत् देशी पोशाक में ही आते रहें ।"

इसी प्रकार लोकमान्य तिलक चोटी के विद्वान और भारत के सर्वमान्य नेता होते हुए भी महाराष्ट्रीय पोशाक में रहते थे और सदा धोती, पगड़ी आदि ही पहिना करते थे । जब उनको अपने मुकदमे के सम्बन्ध में विलायत जाना पड़ा तब भी उन्होंने इस नियम को नहीं छोड़ा । इसी प्रकार मालवीयजी भारतीय पोशाक के परम भक्त थे और लम्बा अंगरखा तथा सफेद पगड़ी एक प्रकार से उनकी प्रतीक बन गई थी । वे सदा बड़ी–बड़ी सरकारी कौन्सिलों और कमेटियों में बुलाये जाते थे, सदस्य बनाये जाते थे, अंग्रेज अधिकारियों से विशेष सम्बन्ध भी रहता था, पर उन्होंने एक दिन के लिए भी अपने नियत वस्त्रों के बजाय अंग्रेजी ढ़ंग के कपड़े नहीं पहिने । गाँधी जी की विशेषता तो जगत्

प्रसिद्ध है । उन्होंने भारतीय आदर्श पालन करने के लिए लँगोटी और ओढ़ने के एक वस्त्र के अतिरिक्त सब कपड़ों का त्याग कर दिया था और विलायत में ब्रिटिश सम्राट् के महल में निमन्त्रित किए जाने पर भी उसी वेष में वहाँ गये । बादशाही महलों में पूरी पोशाक में ही जाने का नियम है और खुले पाँव रखकर वहाँ किसी भी व्यक्ति के प्रवेश करने पर निषेध है, पर गाँधी जी के लिए इस नियम को एक विशेष आज्ञा द्वारा हटा दिया गया और वे लँगोटी पहिन कर ही सम्राट से मिले ।

भारतीय परिधान की महत्ता

अगर प्राकृतिक जीवन के सिद्धान्तानुसार देखा जाय तो पोशाक के सम्बन्ध में भारतीय मनीषियों की मान्यता बहुत ही प्रशंसनीय और हितकारी है । वे प्रकृति के इस नियम को जानते थे कि शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य रक्षा की दृष्टि से वायु तथा सूर्य–प्रकाश का हमारी देह से जितना सम्पर्क होता रहे उतना ही लाभजनक है । इसीलिए वे जो वस्त्र धारण करते थे वे केवल लज्जा निवारण के लिए होते थे । प्राचीनकाल में तो एक वस्त्र कमर के गुल्फ (टखनों) तक पहिन लेना और दूसरा उतना ही बड़ा ऊपर के अंग पर ओढ़ लेना पर्याप्त समझा जाता था । बड़े–बड़े ऋषि–मुनि ही नहीं, राजा–महाराजा तक भी अधिकांश समय इसी वेष में रहते थे । केवल दरबार अथवा युद्ध आदि के अवसर पर अन्य प्रकार की पोशाक धारण की जाती थी जो थोड़े समय बाद कार्य पूरा हो जाने पर उतार दी जाती थी । मध्यकाल में लोग अंगरखा आदि पहिनने लग गये थे । पर वे भी प्रायः ढीले–ढाले और ऐसे होते थे जिनमें होकर वायु और प्रकाश शरीर को मिलते रहें ।

इस पोशाक में और भी कई विशेषताऐं हैं । प्रथम तो यह सस्ती और सुलभ है । आजकल यह दशा है कि जितना दाम कपड़े का लगता है लगभग उतना ही या थोड़ा कम उसकी सिलाई का लग जाता है । अच्छे सूती सूटों की सिलाई २५–३० रुपया या इससे भी अधिक लग जाती है । मुझे वह समय याद है जब कमीज का अच्छा सफेद कपड़ा (ट्विल) ५–६ आने गज आता था, पर एक नामी दर्जी उसकी सिलाई

सवा रुपया माँगता था । इस प्रकार शौकीन ग्राहकों को अठारह आने के कपड़े की सिलाई बीस आना देनी पड़ती थी ।

दूसरी सुविधा सफाई की है । धोती, कुर्त्ता या दुपट्टा आदि को चाहे जब धोया और सुखाकर काम में लिया जा सकता है । हमारे यहाँ धार्मिक दृष्टिकोण से भी स्नान को अनिवार्य माना है और किसी तरह की अशुद्धि होते ही तुरन्त वस्त्रों सहित स्नान करना पड़ता है और धुला हुआ दूसरा वस्त्र पहिनना पड़ता है । यह कार्य धोती आदि से ही संभव है । कोट–पतलून आदि को तो स्वयं धोया ही नहीं जा सकता और उसके सिवा उनमें कलफ, इस्तरी आदि की भी सदैव आवश्यकता होती है जो धोबी द्वारा ही पूरी हो सकती है । इस प्रकार कोट–पतलून के धुलने का अवसर कई सप्ताह या महीनों बाद ही आता है । वे रंग के कारण चाहे गन्दे दिखाई न पड़ते हों, पर जो स्वच्छता और शुद्धता नित्य धोये कपड़ों में प्राप्त होती है वह उनमें कभी नहीं मिल सकती ।

अधिक कपड़े एक भार की तरह हैं

चाहे हम दुनियाँ को दिखावे और शान के विचार से बहुत से वस्त्र पहिने रहें, पर वे वास्तव में एक भार के समान होते हैं । गर्मियों के मौसम में तो प्रायः यह होता है कि हम फैशन के नियमानुसार पूरी 'ड्रैस' पहिनकर बाहर जाते हैं, पर उसके भार से प्रायः पसीने से तरबतर हो जाते और घर लौटते ही जल्दी से जल्दी कपड़ों को उतार कर सन्तोष की साँस लेते हैं । ऐसे लोगों से पूछा जाय कि फैशन की ऐसी गुलामी (अथवा फार्मेलिटी) किस काम की जिसके लिए इस प्रकार अनावश्यक कष्ट और स्वास्थ्य की हानि सहन करनी पड़े । सच्ची बात यह है कि इस प्रकार शरीर पर कपड़ों को लादना सर्वथा अस्वाभाविक है और इसे एक प्रकार से 'सभ्यता का अभिशाप' ही कहा जा सकता है । जो आनन्द और लाभ हमको प्रकृति के साहचर्य में मिल सकता है, वह इस प्रकार के दिखावटी कार्यों से हरगिज प्राप्त नहीं हो सकता । कपड़ों की अधिकता और उनसे होने वाले कुपरिणामों का वर्णन करते हुए एक लेखक ने ठीक कहा है–

"वास्तव में कपड़ों की जरूरत हमको इसलिए पड़ती है कि

हजारों वर्षों से प्रकृति विरुद्ध आहार–विहार करते रहने के कारण हमारा शरीर बिल्कुल दुर्बल व शक्तिहीन हो गया है और रिवाज भी कपड़ों का इतना पुराना हो गया है कि हम समाज में कपड़ों के बिना जी ही नहीं सकते । बिना वस्त्रों के समाज में हमारी बड़ी हँसी होगी और निन्दा भी । लोग बेशरम कहेंगे । इसलिए हमको कपड़े पहिनने पड़ते हैं और जरूरी भी हैं अन्यथा कपड़ों से कोई लाभ नहीं, उल्टा वे हमारे स्वास्थ्य और आयु को क्षीण ही करते हैं ।

सिवाय खास–खास मौकों के अतिरिक्त अपने शरीर को सजाने की भी कोई जरूरत नहीं है और न यह सोचना चाहिए कि इससे हमारा शरीर सुन्दर मालूम देगा । सौन्दर्य तो और चीज है, जो स्वाभाविक जीवन के सिवाय और किसी उपाय से प्राप्त नहीं हो सकता । क्या आकर्षक हिरन, मोर, तोता आदि प्राणी कपड़ों द्वारा सुन्दर लगते हैं ? यदि हम भी प्राकृतिक जीवन व्यतीत करें तो धीरे–धीरे वस्त्रों की आवश्यकता कम होती जायगी और हमारा जीवन अब की अपेक्षा अधिक सुखी प्रतीत होगा । जरा सोचिए, आज कपड़ों की संख्या कितनी अधिक बढ़ गई है । सिर पर टोपा, टोपी, साफा या पगड़ी चाहिए । गले में नेकटाई, कालर, गुलूबन्द आदि । फिर नीचे बनियान, बण्डी और ऊपर कमीज, कुरता, वास्कट, कोट, शेरवानी आदि इनके अतिरिक्त लँगोट, धोती, पजामा, बिरजिस पैण्ट, सलवार आदि भी बराबर काम में लाये जाते हैं । पाँवों में मौजे, जूते चाहिए । जितना बड़ा आदमी होगा उतनी ही अधिक संख्या कपड़ों की होगी । यही हाल स्त्रियों का है । लहँगा, धोती, चोली, जम्फर, ब्लाउज, फ्रॉक, साड़ियाँ, शाल, दुशाले आदि कितनी ही तरह के कपड़े चल रहे हैं । यदि मानव जाति अपनी इन कृत्रिम आवश्यकताओं को धीरे–धीरे कम कर दें तो इतने रोग व कष्ट संसार में नहीं रहेंगे । जो धन व समय इनमें खर्च होता है, वह शरीर सुधार व लोक–कल्याण में व्यय किया जाय तो दुनियाँ का रंग ही बदल जाय ।"

वास्तव में यह मनुष्य जाति का दुर्भाग्य ही है कि उन्होंने वस्त्रों को एक अनिवार्य आवश्यकता मानकर इतना बढ़ा–चढ़ा दिया है कि

उनका दर्जा भोजन के बाद ही माना जा रहा है । इतना ही नहीं, ऐसे लोगों को भी कमी नहीं, जो कपड़ों की शान-शौकत के लिए भोजन की उत्तमता को गौण समझ लेते हैं । ऐसे लोग प्रायः यह कहा करते हैं कि "पेट के खाये को कौन देखता है ? अगर पोशाक-आभूषण आदि ठीक नहीं हुए तो चार भले आदमियों में इज्जत कैसे रह सकेगी ? इस प्रकार के उद्‌गारों का स्पष्ट आशय है कि मनुष्य आन्तरिक स्थिति की अपेक्षा बाहरी टीमटाम को अधिक महत्व देते हैं । इसलिए भीतर चाहे खोखलापन ही क्यों न रहे, ऊपरी चमक-दमक को बनाये रखना चाहिए, जिससे अनजान देखने वाले भ्रम में पड़ जायें और आपको कोई 'बड़ा' आदमी समझ सकें ।

पर ये सब बाल-बुद्धि की बातें हैं । अगर नकली मुलम्मे की चीजें असली के समान कीमती बन जाया करतीं तो समाज-संगठन कभी का तीन-तेरह हो गया होता । इस तरह की ओछी चालों में दस-बीस मूर्ख ही फँस सकते हैं, वह भी दो-चार दिन के लिए । वास्तविक काम तो अपनी आन्तरिक सुदृढ़ स्थिति और शक्ति से ही चलता है । बढ़िया से बढ़िया, चमकीले-भड़कीले वस्त्र तो सभी राजा, नबाब, तालुकेदार आदि पहिन लेते हैं और तो क्या वे हीरे-मोतियों के आभूषण, मुकुट आदि भी धारण कर लेते हैं, तो क्या वे विद्वानों, देशभक्तों, समाज-सेवियों से अधिक सम्मानित हो जाते हैं ? कभी नहीं, जहाँ मामूली पोशाकधारी देशभक्तों का दर्शन करने को लोग घण्टों खड़े-खड़े प्रतीक्षा करते रहते हैं, ऐसे सजे-सजाये राजा-महाराजाओं को देखकर लोग उपहास ही करते रहते हैं और सजे हुए गुड्‌डे के नाम से ही पुकारते हैं । जो महत्व और शालीनता सादा और स्वच्छ धोती, कुर्त्ते या बगलबन्दी आदि में है, वह चमक-दमक की या बड़े मूल्य की या लम्बी-चौड़ी पोशाकों में कदापि प्राप्त नहीं हो सकती । वे तो वास्तव में शरीर के लिए एक भार ही हैं, जिनका सम्मान बुद्धिहीन व्यक्ति ही कर सकते हैं ।

वस्त्र कम से कम तथा ढीले पहनें

मनुष्यों की त्वचा पर छोटे–छोटे असंख्यों छिद्र होते हैं जिनमें से वह भीतर के दूषित तत्वों को बाहर निकालती और बाहर से वायु एवं प्रकाश को भीतर खींचती रहती है । इससे शरीर के भीतरी विकार बाहर निकलते रहते हैं तथा बाहर से ताजी वायु और प्रकाश की ऊष्मा अन्दर जाती रहती है । इससे शरीर की स्फूर्ति तथा कार्यक्षमता में वृद्धि होती है । जो लोग आदतन अथवा फैशन के कारण शरीर को लादे–दाबे रहते हैं, वे इस प्राकृतिक लाभ से वंचित रह जाते हैं । उनके शरीर को बाहर की हवा–रोशनी नहीं मिलती और रन्ध्रों के बन्द रहने से भीतर के विकार जो वायु या पसीने के रूप में निकलते हैं, या तो ठीक से निकल नहीं पाते और जो निकलते भी हैं, तो वे जहाँ के तहाँ दबकर सूख जाते हैं, जिससे विविध प्रकार के चर्म रोग उत्पन्न हो जाया करते हैं । फैशन के कारण तो लोग गर्मी में भी बहुत से कपड़े लादे रहते हैं, किन्तु जाड़ों में तो अधिकांश लोग हर समय गरम मोटा कुर्त्ता, कमीज, जाकेट, कोट तथा ओवर कोट डाटे रहते हैं । जाड़े के दिनों में तो बहुत से लोग 'ऊपर से नीचे तक सिर से पाँव तक तरह–तरह के वस्त्रों तथा उपकरणों से पूरी तरह छिपे रहते हैं । कुछ–कुछ आँखों के सिवाय उनकी एक उँगली तक दिखलाई नहीं देती ।

उनका इस प्रकार कपड़ों से लदा रहना सिद्ध करता है कि उन्हें जाड़ा बहुत लगता है । जरूरत से ज्यादा जाड़ा लगने का अर्थ यही होता है कि शरीर कमजोर है । शरीर की कमजोरी का मुख्य कारण कपड़ों का अधिक प्रयोग ही होता है । प्राकृतिक वायु, धूप या रोशनी न मिलने से शरीर असहिष्णु हो जाता है । उसका अभ्यास बिगड़ जाता है और वह प्रकृति के परिवर्तन तथा ऋतुओं का प्रभाव सहन नहीं कर पाता । जयादा कपड़े पहनने वालों का स्वभाव तथा शरीर इतना कोमल तथा कमजोर हो जाता है कि कभी संयोग से उन्हें बिना वस्त्रों के प्रकृति के सम्पर्क में आना पड़े तो तुरन्त ही उन्हें सर्दी–गर्मी सता जाती है । नजला, जुकाम अथवा ज्वर आदि हो जाता है ।

शरीर को अनावश्यक रूप से कपड़ों से जकड़े रहना एक अप्राकृतिक क्रिया है । प्रकृति तथा मनुष्य के बीच एक व्यवधान है, जो हर प्रकार से हानिकारक है । प्रकाश तथा शुद्ध वायु स्वास्थ्य के ही नहीं जीवन के आधारभूत तत्व हैं । मनुष्य इनके सम्पर्क से जितना दूर होता जायेगा अस्वस्थ तथा अल्पायु बनता जायेगा । दिखावा, फैशन, शौक अथवा स्वभाव वश जो लोग अनावश्यक कपड़ों से कसे रहते हैं, वे प्रकृति का विरोध करते हैं, जिसका परिणाम विविध प्रकार के रोगों के रूप में सामने आता है । किसी भी फैशन परस्त युवक को देख लिया जाये कपड़ों के सिवाय उसके शरीर में कुछ भी दृष्टिगोचर नहीं होता । न तो शारीरिक अवयव सुन्दर व सुडौल होते हैं न माँस पेशियों में दृढ़ता अथवा पुष्टता होती है । शरीर की चमक तथा मुख की कांति विलुप्त हो जाती है । कपड़ों के फैशनेबुल आदमियों के यदि वस्त्र उतरवा कर देखा जाय तो उनके शरीर में स्थान–स्थान पर विवर्ण धब्बे पड़े दिखलाई देंगे । वस्त्रों के मामले में प्रकृति का यह विरोध ठीक नहीं । इससे व्यर्थ व्यय तो बढ़ता ही है, साथ ही स्वास्थ्य तथा शारीरिक सौन्दर्य भी नष्ट हो जाता है ।

भारत में ऋषि, मुनि, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी, संन्यासी सदा कम से कम वस्त्र पहनते थे और अधिक से अधिक प्रकृति के सम्पर्क में रहकर वायु तथा प्रकाश का सेवन किया करते थे । यही कारण था कि उनका शारीरिक स्वास्थ्य तथा मेधा शक्ति अपनी चरम सीमा तक विकसित होती और स्थिर रहती थी । वे सभी ऋतुओं में जंगलों के बीच कुटियों में रहते थे । ऋतुओं का परिवर्तन उन पर कोई प्रभाव नहीं डाल पाता था और वे ऋतुओं का पूरा–पूरा आनन्द लिया करते थे । प्रकृति के अधिक निकट रहने से ही उनमें वह क्षमता रहती थी, कि वे हर क्षेत्र में ऐसे–ऐसे काम कर गये जो आज तक याद किए जाते हैं, उनका लाभ उठाया जाता है और जिनके आधार पर वे जन–साधारण के पूज्य बने हुए हैं ।

वस्त्रों का उपयोग मनुष्य के लिए अस्वाभाविक तथा अप्राकृतिक क्रिया है । प्रकृति ने वस्तुतः मनुष्य को नग्नावस्था में ही उत्पन्न किया

है । हजारों वर्ष तक वह उसी दशा में रहा और स्वस्थ जीवन जीता रहा । उसके शरीर की स्वस्थ त्वचा ही उसका परिधान थी और उस पर उगी रोम राशि ही उसकी आशा थी । प्राकृतिक रूप से रहने के कारण उनकी त्वचा व शरीर की भीतरी शक्ति इतना दृढ़ तथा पर्याप्त होती थी कि वह प्रकृति के हर परिवर्तन को आसानी से सहन कर लेता था । उसे गर्मी में न तो लू सताती थी और न जाड़ों में जुकाम ही होता रहता था । जैसे–जैसे कृत्रिमता बढ़ती गई, मनुष्य प्रकृति से दूर होता चला आया और रोगों का शिकार बनता गया ।

बहुत अधिक वस्त्रों से जकड़ा रहना भी उचित नहीं कहा जा सकता । हमें उचित है कि हम कपड़े पहनें किन्तु उनका उपयोग कम करें । आवश्यकता से अधिक वस्त्र कदापि न पहनें । कपड़े इस प्रकार से बनवायें जिससे हवा और रोशनी शरीर तक आसानी से पहुँच सकें । त्वचा के द्वारा जो दूषित पदार्थ शरीर से बाहर निकलता रहता है, उसमें बाधा न पड़े । जहाँ तक संभव हो कपड़े सूती तथा जालीदार ही पहनना चाहिए । जाड़ों के दिनों में अलबत्ता मोटे तथा गरम कपड़े पहने जा सकते हैं । वह भी आवश्यकता से अधिक और बुरी तरह से चुस्त नहीं । वस्त्र ढीले–ढाले तथा हल्के ही ठीक रहते हैं ।

बहुत से लोग यह दलील देते हैं कि चुस्त वस्त्र पहनने से शरीर चुस्त और ढीले–ढाले वस्त्र पहनने से शरीर ढीला रहता है । यह धारणा गलत तथा प्रकृति के विपरीत है । शरीर के अंगों को जितनी अधिक सुविधा हिलने–डुलने तथा मुड़ने–उठने में होगी उतनी ही फुर्ती उनमें आवेगी और जितनी अधिक बंदिश उन पर लगी रहेगी उतने ही वे धीरे–धीरे संचालित हो पायेंगे । आजकल के जो नौजवान लड़के–लड़कियाँ तंग पोशाक पहनते घूमते हैं उसके कारण न तो वे तेजी से चल पाते हैं, न दौड़ सकते हैं और न आराम से उठ–बैठ सकते हैं । चुस्त कपड़ों से शरीर की स्फूर्ति घटती और ढीले आराम देह कपड़ों से फुरती बढ़ती है । यह तो अनुभव सिद्ध बात है, इसके लिए प्रमाण अथवा तर्क–वितर्क की जरूरत ही नहीं ।

तंग तथा चुस्त वस्त्र पहनने की दो हानियाँ तो स्पष्ट हैं । एक

तो यह कि उनके कारण त्वचा का मैल बाहर निकलने में बाधा पड़ती है, जिससे अनेक प्रकार के चर्म रोग उत्पन्न हो जाते हैं । दूसरे दबाव पड़ते रहने से रक्त का संचार स्वतंत्र वेग से नहीं हो पाता । रक्तवाहिनी नाड़ियाँ त्वचा के पास तक आई हुई होती हैं और उनमें अबाध गति से रक्त का संचार होने से ही हमारा स्वास्थ्य सुदृढ़ होता है । वस्त्रों के कसे रहने से उन पर अनुचित दबाव पड़ता है, जिससे रक्त का संचार रुक–रुक कर होता है, जिससे शरीर में जड़ता तथा कार्यक्षमता की कमी आदि के अनेक दोष उत्पन्न हो जाते हैं ।

कपड़ों के मामले में आजकल एक और रोग भी बढ़ गया है । कृत्रिम कपड़े जो कि प्लास्टिक आदि रासायनिक पदार्थों से बनाये जाते हैं, यह देखने में जितने चमकदार होते हैं, स्वास्थ्य के लिए उतने ही हानिकारक । उनमें वायु तथा प्रकाश जाने का गुण बिल्कुल नहीं होता । इतना ही नहीं इस प्रकार रासायनिक प्रक्रियाओं से बने कृत्रिम कपड़े बड़े ही ज्वलनशील होते हैं । जरासी आग पाते ही सहसा जल उठते और बुझाये नहीं जा सकते । मसाले के पिघलने के साथ ही वे शरीर से चिपट जाते हैं, जिससे मनुष्य की प्राण रक्षा असम्भव हो जाती है । आजकल इस प्रकार के कपड़ों के कारण न जाने कितने लोगों के जल मरने की खबरें रोज ही अखबारों में छपती रहती हैं । नाइलोन और टैरेलीन की साड़ियों पहनने वाली स्त्रियाँ तो आये दिन स्टोवों तथा अँगीठियों के सम्पर्क से साड़ी में आग लग जाने से जलकर मरती रहती हैं । उन्हें आग के पास अधिक रहना पड़ता है किन्तु फैशन तथा शौक के कारण वे ऐसे वस्त्र पहनती है । ऐसी भयंकर भूल से बचना ही श्रेयस्कर है ।

गहने पहिनने का जंगली रिवाज

ऐसे बुद्धिहीन लोग केवल चमक–दमक के या नये–नये फैशनों के कपड़े पहिनकर ही सन्तोष नहीं करते थे । वे अपने महत्व को साधारण लोगों की निगाह में और अधिक बढ़ाने के ख्याल से तरह–तरह के आभूषण धारण कर लेते हैं । वे इसको अमीरी या ऐश्वर्य का चिन्ह समझते हैं और ख्याल करते हैं कि हम जितने अधिक और

बहुमूल्य अलंकार धारण करेंगे उतना ही लोगों की निगाह में प्रतिष्ठित और बड़े समझें जायेंगे । संभव है कोई जमाना ऐसा रहा हो, जब साधारण प्रजाजनों पर अपना रौब, प्रभाव जमाने के लिए राजा, महाराजा रत्न जटित मुकुट सुवर्ण सिंहासन तथा हीरे–मोतियों के आभूषणों का व्यवहार करना आवश्यक समझते होंगे, पर अब तो ये चीजें नुमायशी ही समझी जाती हैं और उनका किसी पर अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता । इसके विपरीत गहने या आभूषण धारण करने की प्रथा सब तरह से हानिकारक मानी जाने लगी है । महात्मा गाँधी ने इस प्रवृत्ति की आलोचना करते हुए एक स्थान पर लिखा था ।

"शायद केवल कपड़ों से सन्तोष न होने पर स्त्री–पुरुषों ने गहने–पहनने शुरू कर दिये । बहुतेरे मर्द भी पैरों में कड़े पहिनते थे । कानों में बालियाँ लटकाते हैं और हाथ में अँगूठी पहिनते हैं । ये सब गन्दगी के घर हैं । यह समझना बहुत ही कठिन है कि इन सबके पहिनने में कौन–सी शोभा फटी पड़ती है । इस विषय में औरतों ने तो हद कर दी है । वे पैरों में ऐसे भारी–भारी कड़े, पाजेब पहनती है कि पैर उठाना भी कठिन हो जाता है । बालियों जितने गहने हों उतने ही थोड़े । इस पहिनाव से शरीर पर बड़ा मैल जमा हो जाता है । कान और नाक में तो मैल की हद ही नहीं रहती । इस मैली दशा को श्रृंगार समझकर खूब पैसे फूँकते हैं । चोरों के भय से जान–जोखिम में डालते हुए भी नहीं डरते । किसी ने बहुत ठीक कहा है कि–अभिमान से पैदा हुई मूर्खता को हम तकलीफ सहते हुए जो नजराना देते हैं, वह बहुत अधिक होता है । ऐसे उदाहरण बहुत लोगों ने अपनी आँखों देखे होंगे कि कान में फोड़ा होने पर भी औरतों ने अपनी बालियाँ नहीं उतारने दीं । हाथ में फोड़ा होकर पक गया फिर भी पहुँची नहीं उतरी । उँगली पक कर सूज आई तब भी मर्द–औरत अपनी अँगूठी उतारना नहीं चाहते क्योंकि वे समझते हैं कि इससे उनके रूप में फर्क पड़ जायगा ।

दुनियाँ में मनुष्य के लिए बहुत से दुःख, आपत्तियों, भय परिस्थितियों के कारण उत्पन्न होते रहते हैं, पर जो कष्ट स्वयं खर्च करके पैदा किया जाय उसके लिए क्या कहें ? गहनों के पहिनने की

प्रथा ऐसी ही मूर्खता पूर्ण होती है । इनके व्यवहार करने से किसी प्रकार का शारीरिक, मानसकि लाभ होता दिखाई नहीं देता और आध्यात्मिक दृष्टि से तो यह अहंकार का उत्पादक, अतएव आत्मा का पतन करने वाला है । हमारे देश के समाज हितचिन्तक व्यक्ति वर्षों से यह शिकायत करते आये हैं कि भारतवर्ष की पूँजी का एक बड़ा भाग गहनों के रूप में निष्क्रिय पड़ा रहता है । यदि इस अरबों रुपये के धन को उद्योग धन्धों में लगाया जाता तो लाखों व्यक्तियों को जीवन–निर्वाह का रोजगार मिलता और करोड़ों रुपये की सामग्री तैयार होकर देश की समृद्धि बढ़ती, पर जेवरों के रूप में उल्टा उसमें टूट–फूट, घिसाई, बार–बार बनवाना, खोना, चोरी जाना आदि कारणों से घटी ही होती रहती है और हजार रुपये की रकम दस–बीस साल में पाँच सौ की रह जाती है । मनुष्य की उन्नति या कल्याण में आभूषण जैसे पदार्थ से किसी प्रकार का सहयोग मिल सके, यह असंभव है । फिर भी ऐसी हानिकारक और अनावश्यक प्रवृत्ति को पाला–पोसा जाय ? इन कृत्रिम आभूषणों के स्थान में हमको सद्गुण रूपी आभूषण धारण करने चाहिए, जिससे लोक और परलोक दोनों जगह हमारा हित हो सके ।

जूतों और मोजों की अधिकता

यदि यह कहा जाय कि जूते और मोजों के पहिनने वाले भी पैरों के आराम और सुरक्षा के बजया फैशन का ही अधिक ध्यान रखते हैं, तो इसमें कोई अत्युक्ति नहीं है । चमड़े के कसे हुए बूट–जूता, जिनमें पैर बन्द होकर बिल्कुल पसीज जाता है, किसी दृष्टि से हमारे देश के उपयुक्त नहीं है । हमारे यहाँ तो प्राचीन समय के खड़ाऊँ जैसी चीजों का प्रचार था जिनमें पैर खुला रहता है, उसे हवा लगती रहती है और केवल काँटों, कंकड़, पत्थर तथा धूप से बचाव हो जाता है । कुछ स्थानों में चप्पल जैसी चीजों का प्रचार था जिनको पहिन कर आसानी से दूर तक चला जा सकता है । इनमें भी पंजों को पूरी तरह से हवा लगती रहती है और किसी तरह की गन्दगी तुरन्त दिखाई पड़ जाती है ।

हमारे समस्त अगों में पैर ऐसे हैं जो शरीर के भीतर मैल को सबसे अधिक बाहर निकालते हैं उनका धूल मिट्टी आदि से सम्पर्क भी

अधिक होता है । इसलिए यह आवश्यक है कि उनकी सफाई का विशेष ध्यान रखा जाय । प्राचीन भारतीय सभ्यता में किसी अतिथि के बाहर से आने पर सबसे पहले उसके चरण धुलाने की प्रथा थी । इसका उद्देश्य पैरों की स्वच्छता का विशेष ध्यान रखना ही था । आजकल के फैशन परस्त जूते तो ऊपर से पॉलिश लगाकर चमकाने का तो बड़ा ध्यान रखते हैं, पर उसके भीतर किस प्रकार पसीना और मैल जमा हो जाता है इस तरफ कभी ध्यान नहीं देते । यह गन्दगी कैसी हानिकारक होती है, इस सम्बन्ध में गाँधी जी ने लिखा है–

'पैरों के द्वारा भी हम बहुतेरे रोगों के पंजे में फँस जाते हैं । बूट इत्यादि पहिनने वालों के पैर नाज़ुक हो जाते हैं । उनसे पसीना निकलता है और यह बहुत ही बदबू करता है । जिस मनुष्य को वास की परख है वह मोजे और बूट पहिनने वाले मनुष्य के पास उस समय खड़ा नहीं रह सकता जब वह उनको उतार रहा हो । हम जूतों को 'पादत्राण' या 'कण्टकारि' कहते हैं । इससे सिद्ध होता है कि जब हमको काँटों में, ठण्डक या धूप में चलना पड़े तभी जूते पहिनने चाहिए, सो भी इस प्रकार के जिनसे केवल तलुए ही ढकें, सारा पैर न ढक जाय । इस कार्य को चप्पल या सैण्डिल के आकार के जूते भली–भाँति पूरा कर सकते हैं । जिनका सिर दुखता हो, जिनका शरीर कमजोर हो, जिनके पैरों में दर्द होता हो, और जिन्हें जूता पहिनने की आदत है उनके लिए तो हमारी यह सलाह है कि वे नंगे पैर चलने का प्रयोग करके देखें । इससे उन्हें तुरन्त मालूम हो जायगा कि पैर खुले रखने, जमीन पर नंगे पैर चलने और उन्हें पसीना रहित रखने से हम कितना लाभ उठा सकते हैं ।'

पर आजकल यह देखने में आता है कि जो लोग चमड़े का फीतादार जूता पहिनते हैं उनका पैर सदा भीगा–भीगा–सा बना रहता है और जूते–मोजे में सदा गन्दगी बनी रहती है । इससे पैरों की ऐसी बीमारियाँ पैदा हो जाती हैं जो बहुत खर्च और परिश्रम करने पर भी भी शीघ्र ठीक नहीं होतीं । इतने पर भी फैशन परस्त लोगों में जूतों का शौक बढ़ता ही जा रहा है । कॉलेज मे पढ़ने वाले नये लड़के तो

खाते समय भी जूता नहीं उतारते और अनेक बार तो वे पहिने हुए ही सोने लग जाते हैं । इस तरह की गन्दी आदत और लापरवाही स्वास्थ्य की दृष्टि से से बहुत ही हानिकारक है ।

यदि जाड़े आदि में मौसम के कारण जूता पहिनना भी पड़े तो चमड़े के बजाय कपड़े का जूता काम में लाना अधिक ठीक रहता है । इनमें एक तो हवा जाने की गुञ्जायश रहती है, पैर दब कर घायल नहीं होते और एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि जीव–रक्षा, अहिंसा की दृष्टि से भी चमड़े के जूतों से बचना और कैनवास आदि के जूतों का प्रयोग करना उचित है । जो लोग गो–रक्षा के पक्षपाती हैं उनको तो चमड़े का जूता कदापि व्यवहार में नहीं लाना चाहिए क्योंकि गो–वध का मुख्य तथा बहुत बड़ा कारण चमड़े के लिए उनका मारा जाना ही है । जूता अधिक कसा कभी नहीं होना चाहिए और पसीना आने पर उसे तुरन्त उतार देना चाहिए । समय–समय पर जूतों तथा मोजों को भी, यदि उनका व्यवहार परिस्थिति वश करना पड़े तो साफ करते रहना चाहिए, क्योंकि चलने–फिरने में उन पर धूल–गर्दा पड़ना तथा गन्दा होना स्वाभाविक ही है ।

छोटे बच्चों के वस्त्र

हमारी वस्त्र–सम्बन्धी धारणा जिस प्रकार अपने विषय में भ्रान्त हो गयी है, उसी का प्रयोग हम छोटे बालकों पर करते हैं । हम छोटे बच्चों की शारीरिक स्थिति और स्वास्थ्य पर ध्यान न देकर उसे सजाना और तरह–तरह के बहुत से वस्त्र पहिनना आवश्यक समझते हैं । बहुत से लोग तो पारिवारिक प्रतिष्ठा के खयाल से बच्चों को बढ़िया पोशाक, आभूषण आदि पहिनाना आवश्यक समझते हैं, चाहे बालक असुविधा अनुभव करके पहिनने के कैसे भी अनिच्छुक क्यों न हों । इस सम्बन्ध में एक अनुभवी लेखक की निम्न सम्मति विचारणीय है–

'बच्चों के वस्त्रों के सम्बन्ध में तो हम इतनी भयकर भूल कर रहे हैं कि जिसका कोई ठिकाना नहीं । जन्म से ही बेचारे बच्चों को भारी गरम कपड़े पहना दिये जाते हैं ताकि हवा न लगे । कपड़े पहिना कर ही हम सन्तुष्ट नहीं होते बल्कि अबोध बच्चों को कपड़े से इतना

ढँक देते हैं कि वे अन्दर घुटकर रोते रहते हैं । इस प्रकार हम अपने हाथों से अपने बच्चों का स्वास्थ्य व जीवन नष्ट कर देते हैं । जितना अधिक बच्चों को कपड़े से ढँका जायगा उतना ही अधिक कमजोर और बीमार वह होगा । बच्चे वस्त्रों का विरोध करते हैं और माता-पिता बलपूर्वक उन्हें पहिना देते हैं । वास्तव में बच्चों में स्वाभाविक गर्मी अधिक होती है, बड़े-बूढ़ों की अपेक्षा वे अधिक देर नंगे रह सकते हैं । बहुधा देखा गया है कि बच्चे अवसर पाते ही अपने सारे वस्त्र उतार कर फेंक देते हैं । उनका अन्तःकरण उन्हें ऐसा ही करने की आज्ञा देता है । कपड़ों को उतार करके बड़े प्रसन्न होते हैं मानो उनके सिर से बोझ हट गया ।

'जब जरूरत हो तो भी बच्चों को हल्के कपड़े पहिनने चाहिए । जब तक बच्चे पाँच वर्ष के न हों उनको यथासम्भव अधिक समय तक नंगे रहना चाहिए । फिर आप देखेंगे कि वे कैसे प्रसन्नचित्त, नीरोग व बलवान होते हैं । मगर आज माताऐं बच्चों को सिर से पाँव तक इस प्रकार ढँक देती हैं कि बदन का कोई हिस्सा खुला न रहे । सिर पर टोपा या टोपी होती है । गले में गुलूबन्द, बनियान, कमीज, कोट बदन पर होते हैं । फिर पैण्ट, जूते-मोजे भी साल भर की आयु में ही पहिना दिये जाते हैं । इस प्रकार अनावश्यक वस्त्रों से सदा ढँके-दबे रहने वाले बच्चे कभी पूर्ण स्वस्थ और शक्तिशाली नहीं हो सकते ।

यह एक सुनिश्चित तथ्य है कि अभ्यास करते-करते ऐसे कामों को करके दिखा सकते हैं जो सामान्यतः असम्भव समझे जाते हैं । कुछ सर्कस आदि में काम करने वाले पहलवान तो चलती मोटर को रोक लेते हैं, पचास मन का पत्थर छाती पर रख लेते हैं अथवा हाथी को भी अपने ऊपर खड़ा करा लेते हैं । यह सब अभ्यास का ही फल है । स्वर्गीय पहलवान राममूर्ति ने सर्वप्रथम इन कार्यों का प्रदर्शन करके बड़ा यश और धन कमाया था । बतलाते हैं कि मैं बचपन में बहुत कमजोर था और प्रायः बीमार होता रहता था । किसी से प्रेरणा पाकर उन्होंने अपनी निर्बलता को दूर करने का निश्चय किया और व्यायाम करके आठ-दस वर्ष में अपने को इतना शक्तिशाली बना लिया कि उस समय

के बहुत बड़े पहलवानों में उनकी गिनती की जाने लगी थी ।

जिस प्रकार कमजोर आदमी, बालक स्वास्थ्य के नियमों का पालन करके और व्यायाम की मात्रा बढ़ाकर बहुत बल और सुदृढ़ स्वास्थ्य को प्राप्त कर सकते हैं, उसी प्रकार यदि उनको छुई-मुई के पौधे की तरह सदा दबा-ढँका रखा जाय और प्रकृति के सामान्य परिवर्तनों से भी बचाया जाय तो आगामी जीवन में उनका सशक्त और कर्मठ होना किसी प्रकार सम्भव नहीं हो सकता । ऐसे बालक जरा-सी सर्दी-गर्मी के असर से बीमार होते रहते हैं । उनको सदा खाँसी, सर्दी और निमोनियाँ बने ही रहते हैं । ऐसे ही बालकों को शीघ्र लू लग जाती है और बार-बार ज्वर आदि का आक्रमण होता रहता है । अगर उनको छोटी अवस्था से ही विधिपूर्वक प्रकृति के साहचर्य में रहकर वस्त्रों का कम उपयोग किया जाता तो वे क्रमशः सहनशील बन जाते और आगे चलकर जीवन संघर्ष में अधिक समर्थ और सफल सिद्ध हो सकते । इसका यह भी आशय नहीं कि दो-चार महीने के बच्चों को लापरवाही से रखा जाय और कठोर शीत अथवा गर्मी में उनकी रक्षा न की जाय, पर सामान्य मौसम में उनको अवश्य मामूली कपड़ा पहिनाकर या नंगा ही रखकर खुले वातावरण में खेलने-कूदने का अवसर दिया जाय जिससे उनकी शारीरिक शक्तियों का ढंग से विकास हो सके ।

कृत्रिम जीवन को त्याग दीजिए

खेद का विषय है कि वर्तमान समय में मनुष्य प्राकृतिक जीवन को त्यागकर अधिकाधिक कृत्रिमता की तरफ झुक रहा है । हमारा खान-पान, रहन-सहन, आचार-विचार सब कृत्रिमता से प्रभावित हो रहे हैं । इसका परिणाम भी आँखों के सामने है । मनुष्य की शारीरिक शक्तियाँ दिन पर दिन क्षीण होती जाती हैं और वह यन्त्रों अथवा बाह्य उपकरणों की सहायता से जीवन निर्वाह कर रहा है । आज के लाखों युवक पच्चीस-तीस वर्ष की आयु में चश्मा लगाकर देख पाते हैं और हजारों ४० वर्ष की आयु में ही नकली दाँत लगाकर खाना खा पाते हैं, अधेड़ आयु में ही चलने के लिए सवारी की आवश्यकता पड़ती है । यह सब किन कर्मों का प्रतिफल है ?

यह सब प्रकृति से दूर हटकर सीधे, सरल, स्वाभाविक जीवन मार्ग को त्यागकर हर बात में बाहरी टीमटाम, परिश्रम से बचने, बड़प्पन की झूठी शान दिखलाने का ही नतीजा है । हम जानते हैं कि वर्तमान समय में वस्त्रों का पहिनना आवश्यक है, अब सामान्य मनुष्यों को नंगे रहने या केवल लँगोटी लगाकर रहने की सलाह कोई सनकी ही दे सकता है, फिर भी वस्त्रों की जैसी अधिकता और कृत्रिमता आजकल देखने मे आ रही है उसका समर्थन कभी नहीं किया जा सकता । गर्म देशों में या गर्मी की ऋतु में सूती वस्त्र और ठण्ड में ऊनी वस्त्र पहिनना बुरा नहीं है । इस प्रकार अधिक ठण्ड पड़ने पर शारीरिक स्थिति के निर्बल होने पर एक से अधिक वस्त्रों का प्रयोग भी अनुचित नहीं है, पर एतराज तो तब किया जाता है, जब वस्त्रों को शरीर की रक्षा के बजाय शान या शौक का साधन मानकर उनकी भरमार कर दी जाती है ।

शरीर को इस प्रकार अनावश्यक वस्त्रों से जकड़ लेने का नतीजा यह होता है कि हम सूर्य के स्वास्थ्यदायक प्रकाश और वायु की जीवनी शक्ति से वंचित रह जाते हैं । प्रकाश और शुद्ध वायु स्वास्थ्य के ही नहीं जीवन के आधार हैं । हमारी जो आदत या शौक उनके प्राप्त करने में बाधक होती है वह निस्संदेह निन्दा के योग्य त्याज्य है । आजकल करोड़ों लोग जिस प्रकार केवल दिखाने के लिए तरह-तरह के कई-कई कसे हुए वस्त्र पहिने रहते हैं वह निश्चय ही स्वास्थ्य की दृष्टि से घातक हैं । फिर किसी बीमारी आदि में किसी खास परिस्थिति को छोड़कर हमेशा वस्त्र पहिने रहना और इसे ही सभ्यता का चिन्ह मान लेना भी गलती है ।

हमारे देश में तो ऋषि, मुनि, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी सदा कम से कम वस्त्र पहिनने वाले हुए हैं और वे सर्वसाधारण द्वारा पूज्य माने गये हैं । जीवन के सभी क्षेत्रों में ऐसे काम कर गये हैं जो आज तक स्मरण किए जाते हैं । इसलिए वस्त्रों का सम्बन्ध सभ्यता या आदर-सम्मान से जोड़ना एक भ्रामक विचार है जिसको अब जितना हो सके शीघ्र छोड़ देना चाहिए ।

हम लोगों के लिए वस्त्रों का सबसे बढ़िया आदर्श महात्मा गाँधी बतला गये हैं उन्होंने जिस हाथ की बनी खादी का प्रचार किया था निस्सन्देह उससे बढ़कर स्वास्थ्य रक्षक दूसरा वस्त्र नहीं हो सकता । आवश्यकता हो तो ऐसी खादी यन्त्रों से भी बनाई जा सकती है और बनाई भी जाती है । यदि हम अपनी आर्थिक और सामाजिक स्थिति के अनुसार ऐसे कपड़े के धोती, कुर्त्ता, टोपी आदि का प्रयोग करें तो वह निस्संदेह सादगी, स्वच्छता, सुलभता की दृष्टि से आदर्श पोशाक हो सकती है । इससे हम अपने स्वास्थ्य और धन की ही रक्षा नहीं करेंगे, वरन् इससे हमारे विचारों में भी शुद्धता आयेगी और हम झूँठे अहंकार से बचकर अपने सामान्य देश भाइयों के साथ प्रेम और सहानुभूति का व्यवहार कर सकेंगे ।

वस्त्रों में बहुत अधिक भिन्नता रखना, सबसे निराली, बहुत कीमती पोशाक पहिनना समाज में वैषम्य का कारण भी बनता है । ऐसे व्यक्ति व्यर्थ में अपने को दूसरे लोगों से बड़ा या विशेष मानने लगते हैं और इस प्रकार एक निरर्थक भेदभाव को जन्म देते हैं, जो अन्त में राष्ट्रहित की दृष्टि से भी हानिकारक सिद्ध होता है । इसलिए हमको वस्त्रों के सम्बन्ध में अपना दृष्टिकोण अवश्य बदलना चाहिए और जीवन–रक्षा के वास्तविक उद्देश्य के अतिरिक्त उनको वह अनुपयुक्त स्थान कदापि न देना चाहिए, जिससे वे हमारे लिए उपयोगी होने के बजाय हानिकारक अथवा पतन करने वाले सिद्ध हो सकें ।

प्रभावशाली व्यक्तित्व यों बनता है

एक उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्ति जिस काम में सफल नहीं होता, उसमें दूसरा साधारण–सी शिक्षा पाकर भी अपना अधिकार कायम कर लेता है । इण्टरव्यू होता है, जिसमें कई बार देखा जाता है कि एम. ए. पास ले लिए जाते हैं । कई पण्डित, विद्वान् दुनियाँ के एक कौने में पड़े–पड़े अपने भाग्य को कोसा करते हैं किन्तु सामान्य ज्ञान रखने वाले लोग दुनियाँ के रंगमंच पर उतरते हैं अपना प्रभाव और महत्ता कायम करते हैं ।

बाह्य साधन–सुविधा सम्पन्न कई व्यक्ति समाज के एक कोने में

स्थान पाते हैं जब कि दूसरे अभावग्रस्त बाह्य साधन सुविधाओं से रहित व्यक्ति समाज में अपना आकर्षण और महत्त्व पैदा करते हैं, आगे बढ़कर समाज का नेतृत्व करते हैं । बहुत से लोग इस तरह के विरोधाभास को पक्षपात् भेदभाव, अन्धानुकरण आदि का कारण बताते हुए दूसरों को दोष देकर ही सन्तुष्ट हो लेते हैं । हालांकि कुछ अंशों में ये विषमतायें भी समाज में फैली हुई हैं जिनके कारण उक्त मनुष्य का अपना अविकसित संकीर्ण व्यक्तित्व ही होता है ।

महात्मा सुकरात के पास एक व्यक्ति तत्वज्ञान की शिक्षा प्राप्त करने के लिए आया, किन्तु मिलते ही उन्होंने उस व्यक्ति को ठीक से बाल काढ़ने, कपड़े पहिनने, उन्हें साफ रखने, शरीर को स्वस्थ बनाने का उपदेश दिया । वह हक्का-बक्का रह गया और तत्वज्ञान न देकर छोटी-छोटी बातें बताने की शिकायत की इस पर महात्मा सुकरात ने बताया-"स्वस्थ, सबल, व्यवस्थित जीवन ही आध्यात्मिक साधना की प्राथमिक आवश्यकता है । इसके अभाव में कोई भी तत्वज्ञान आध्यात्मिक अनुभूति का अधिकारी नहीं है ।" जीवन में सामान्य बातों से लेकर साधारण सफलताओं के लिए व्यक्तित्व का ठोस सबल और सर्वांगपूर्ण विकसित होना आवश्यक है । इसके बिना सफलता की आशा करना दुराशा मात्र ही है, स्वास्थ्य, शिक्षा, रहन-सहन बोलचाल काम करने का तरीका आदि विभिन्न बातें व्यक्तित्व के अंग हैं । इन सभी का व्यवस्थित, स्वस्थ, सुन्दर, सुरुचिपूर्ण होना सबल एवं प्रभावशाली व्यक्तित्व का आधार है ।

किसी भी पदार्थ के स्वस्थ, सुन्दर, व्यवस्थित, निर्मल आचरण की ओर आकर्षित होना मानव स्वभाव की साधारण वृत्ति है । स्वास्थ्य, कपड़े, रहन-सहन के तरीके, बोल-चाल, भाव-भंगिमा आदि व्यक्तित्व के बाह्य प्रतिबिम्ब हैं, जिनसे दूसरे लोग प्रभावित प्रेरित होते हैं । जिनके बाल अस्त-व्यस्त बिखरे हुए हों, वस्त्र गन्दे और बेतरतीव हों, जिनके पास जाने से ही बदबू आती हो इस तरह के लोगों का प्रथम प्रभाव ही बुरा पड़ेगा और समाज में लोग उनसे दूर हटने का प्रयत्न करेंगे । फिर ऐसे व्यक्ति कोई बड़ी सफलता मिलने की आशा कैसे रख सकते हैं ?

संयमित और मर्यादित जीवन बिताकर सुन्दर स्वास्थ्य पाया जा सकता है । सुन्दर स्वास्थ्य प्रकृति का महत्त्वपूर्ण उपहार है जो प्रत्येक प्राणी को मिलता है । अपने दुष्कृत्यों, अमर्यादित, अनियमित जीवन, अप्राकृतिक रहन–सहन के कारण ही स्वास्थ्य खराब होता है । शरीर और वस्त्रों को साफ रखना भी कोई कठिन बात नहीं केवल आलस्य के कारण ही मनुष्य तरह–तरह की बहानेबाजी लगाकर इनसे बचना चाहते हैं । कई लोग कहते हैं–"क्या किया जाय पैसों के अभाव में उनके लिए साफ–सुथरे रहना, स्वस्थ बनना संभव नहीं ।" किन्तु यह अपनी कमी को छिपाने का प्रयत्न दूहरी भूल है । कोई भी व्यक्ति इतना गरीब नहीं होता जो कपड़े तो पहने किन्तु इन्हें साफ रखने को साबुन के पैसे खर्च न कर सके । उल्टे साफ न करने से कपड़े मैल और पसीने में लगकर अधिक फटते हैं, जिससे साबुन आदि के खर्चे से अधिक हानि हो जाती है ।

जो खा सकता है, वह स्वस्थ भी रह सकता है, जो कपड़े पहन सकता है, वह उन्हें स्वच्छ भी रख सकता है । अपने बढ़े नाखून काट सकता है । आँखों में जमी हुई कीचड़ धो सकता है, किन्तु मनुष्य लापरवाही और आलस्यवश अपने स्वास्थ्य और सफाई का उत्तरदायित्व पूरा नहीं करता, जिससे उसके व्यक्तित्व का बाह्य ढाँचा भी भद्दा–फूहड़ मालूम पड़ने लगता है और देखने वालों पर विपरीत प्रभाव डालता है फिर नौकरी न मिले, इण्टरव्यू में असफल होना पड़े, दर–दर धक्के खाने पड़ें तो उसमें आश्चर्य और दुःख की क्या बात है ? इतना ही नहीं अस्वस्थता, गन्दगी, अव्यवस्था से तो मनुष्य को आंतरिक प्रफुल्लता, सन्तोष, शान्ति, उत्साह स्फूर्ति आदि भी नहीं मिलते ।

इस सम्बन्ध में एक बात और भी महत्व की है । व्यक्तित्व को सुघड़, स्वस्थ बनाने के लिए स्वास्थ्य, सफाई, स्वच्छता, व्यवस्था की तो आवश्यकता है ही किन्तु इसका उद्देश्य स्वास्थ्य संचय करने का अथवा बनाव–श्रृंगार, फैशन, तड़क–भड़क को ही महत्त्व देने के लिए नहीं होना चाहिए । इससे यही बातें व्यक्तित्व के लिए हानिप्रद और विरोधी

बन जाती हैं । अधिक टीम–टाम बनाना, चटक–मटक से रहने की आदत, गम्भीरता, स्वाधीनता, संजीदगी का नहीं वरन् छछोरपन और बचकानी वृत्ति का परिचय देती है ।

कई लोग प्रथम भेंट में ही लोगों पर ऐसा प्रभाव डालते हैं कि वे सहज ही उनसे आकर्षित और प्रभावित हो जाते हैं । ऐसे लोगों में एक तरह का जादू होता है । उनके चेहरे की आकर्षक मुद्रा मुस्कराहट नेत्रों में आशा भरी चमक गजब की होती है । ऐसे व्यक्ति जहाँ होते हैं, वहाँ अपने अनुकूल वातावरण बना लेते हैं, उपयुक्त स्थान प्राप्त कर लेते हैं । इसका कारण होता है, मनुष्य का आत्म–विश्वास, दृढ़ इच्छा शक्ति, चेहरे से निकलता हुआ जीवन्त कार्यक्षमता का प्रकाश । ये ही तत्व दूसरों पर मनुष्य की अदम्य शक्ति की छाप डाल देते हैं और जादू की तरह प्रभावित करते हैं ।

जीवन में सादगी की आवश्यकता और उपयोगिता

यह निश्चित है कि हमारा जीवन जितना बनावटी होगा, हमारी आवश्यकताऐं जितनी बढ़ी हुई होंगी, उतना ही हमें अपनी शक्तियों को उनकी प्राप्ति के लिए किए जाने वाले प्रयत्न में लगाना होगा, जैसा कि आजकल हो रहा है । प्रतिमाह सौ रुपये से हजार रुपये पाने वाले व्यक्ति तक जीवन में अभाव ही महसूस करते हैं । उनका निर्वाह नहीं होता और जन–साधारण का जीवन इसकी पूर्ति के लिए भाग–दौड़ में ही लगा रहता है । नीति–अनीति से जैसे भी बने मनुष्य अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जुटा रहता है । जीवन के किसी उत्कृष्ट पहलू, आदर्श दृष्टिकोण, महान् लक्ष्य पर सोचने–विचारने का उसे समय ही नहीं मिलता । अधिकांश मनुष्य गरीब से अमीर तक सभी अपनी आवश्यकता की पूर्ति के गोरख धन्धे में ही लगे रहते हैं । इधर आमदनी बढ़ती है, तो उधर आवश्यकताऐं सुरसा की तरह मुँह फाड़कर खड़ी हो जाती हैं और यह भी निश्चित है कि हमारी दिन–रात बढ़ने वाली आवश्यकताओं का कभी भी अन्त नहीं हो

सकता । इन पर नियंत्रण प्राप्त करने का एक ही आधार है और वह है सादगी के आधार पर अपनी आवश्यकताओं का निर्धारण करना ।

वस्त्रों की आवश्यकता इसलिए होती है कि हम अपने शरीर को ढँक सकें । सर्दी–गर्मी से शरीर का बचाव कर सकें और यह साधारण मूल्य के कपड़े से सम्भव है । गाँधी जी तो खादी की एक धोती और चद्दर में ही काम चला लेते थे । सन्त महात्मा एवं महापुरुषों का काम थोड़े से कपड़ों से ही चल जाता है । फिर क्या आवश्यकता पड़ जाती है कि हम लोग बड़ा मँहगा कीमती कपड़ा खरीदें और उसे नई तर्जों एवं डिजायनों में बनवायें ।

हम पेट भरने के लिए खाते, अपने स्वाद के लिए, मिठाइयाँ, पक्वान्न, चाट–पकौड़ी न जाने क्या–क्या उड़ाते हैं और अपनी कमाई का पैसा गँवाते हैं, साथ ही इसके कारण बीमारियों के शिकार होकर डाक्टर, वैद्य, हकीमों के पास जाते हैं फिर दवाओं के नाम पर खर्च करते हैं । यदि आदमी पेट भरने की दृष्टि से ही खाये तो बहुत कम खर्च में काम चल सकता है ।

इसी तरह हम रहन–सहन, रीति–रिवाज, त्यौहार–वार, विवाह–शादी आदि के नाम पर दिखावे के लिए अपने नाम या बड़प्पन के लिए किस तरह इन्हीं में अनाप–शनाप खर्च करते हैं ? भारतीय नागरिक की कमाई का बहुत बड़ा अंश इन्हीं में खर्च हो जाता है । हालाँकि इसके लिए हमारी प्राचीन परम्पराऐं, रूढ़ियाँ आदि कम उत्तरदायी नहीं हैं फिर भी विचारशील व्यक्ति प्रयत्नपूर्वक इस तरह के फालतू खर्चे को रोक सकते हैं ।

तथाकथित "जीवन स्तर" "स्टैण्डर्ड आफ लिविंग" की प्रचलित व्याख्या ही यह हो गई है कि मनुष्य कितना कीमती वस्त्र पहनता है, खाने–पीने, मौज–मजे करने में कितना अधिक खर्च करता है । समाज में ब्याह–शादी, दावत–भोज आदि के नाम पर कौन कितना धन फूँकता है, इसके आधार पर ही उसका बड़प्पन आँका जाता है और इस सबके कारण मनुष्य दिन–'रात कमाने की फिक्र में लगा रहता है । यदि लोगों के जीवन उद्देश्य के बारे में अन्वेष्ण किया जाय तो

निन्यानवे प्रतिशत, "कमाना और खा–पीकर जीवन बिता देना" ही निकलेगा और खाना–पीना, पहनना मौज–मजे करना भी ऐसा जिससे अन्त में मनुष्य को कोई लाभ नहीं मिलता, उसे पश्चात्ताप ही हाथ लगता है । सम्पूर्ण जीवन इसी गोरखधन्धे में लगा देना और फिर उसका नतीजा शून्य ! कैसी बिडम्बना है ? कैसी मरीचिका है ।

सादगी भारतीय जीवन पद्धति का एक महत्वपूर्ण नियम रहा है और शायद सादा जीवन बिताकर ही हमारे पूर्वजों ने ज्ञान की महान् साधना की होगी । उस ज्ञान की जिसके कारण समस्त संसार भारत को सभ्यता का सूर्य, ज्ञान–विज्ञान का देश मानता रहा, जिसके बल पर भारत जगद्गुरु कहलाया ।

सादगी एक ऐसा नियम है जिसके सहारे हम अपने वैयक्तिक तथा सामाजिक जीवन की बहुत–सी समस्याओं को हल कर सकते हैं । सादगी के द्वारा अपना बहुत–सा समय, धन खर्च होने वाली शक्तियाँ बचा सकते हैं और उनका अपने उत्कर्ष के लिए सदुपयोग कर सकते हैं ।

इसलिए हमारे पूर्वजां ने जीवन के बाह्य विभाग को कम महत्त्व दिया है । सादगी से जीवन बिताने के लिए कहा है ताकि हम अपनी शक्ति व्यर्थ नष्ट न कर उसका सदुपयोग अच्छे कार्यों में कर सकें । ऋषियों का जीवन इसी सत्य का प्रतीक था और किसी भी महान् पथ का साधन करने वाले महापुरुष को सादगी का मार्ग ही अपनाना पड़ता है । अपनी आवश्यकताऐं बहुत कम सामान्य रखनी पड़ती हैं जिनसे जीवन का निर्वाह सहज रूप में होता रहे ।

सादगी जहाँ व्यक्तिगत जीवन में लाभकारी होती है । वहाँ सामाजिक जीवन में भी संघर्ष, रहन–सहन की असमानता, कृत्रिम अभाव, मँहगाई आदि को दूर करके वास्तविक समाजवाद की रचना करती है । सादगी समाजवाद का व्यावहारिक नियम कर दिया जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी । समाज में जीवन संघर्ष इसलिए बढ़ गया है कि प्रत्येक अपने लिए अधिक से अधिक माँग करता है । अपनी शक्ति के अनुसार साधन–सामग्री जटा लेता है । इससे दूसरों का हक भी छिनता

है और समाज में अभाव से मँहगाई बढ़ती है । सादगी सिखाती है कि जितनी आवश्यकता हो, जितने से जीवन सरलता से चल जाता हो, उतना ही काफी है, फिर छीना–झपटी क्यों करेगा ? न किसी का हक छिनेगा न मँहगाई बढ़ेगी । यदि संसार के सभी लोग सादा जीवन बिताने लगें तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि मानव जाति की अनेकों आर्थिक और सामाजिक समस्यायें सुलझ जायँ । जीवन सरल हो जाय ।

इसलिए जीवन को सादा बनाइए, इससे आपका और समाज का बहुत बड़ा हित साधन होगा ।

अन्दर और बाहर की पवित्रता

पवित्रता, शुद्धता, स्वच्छता मानव जीवन को ऊँचा उठाने के लिए एक महत्वपूर्ण सद्‌गुण हैं । अनेक लोग स्वच्छता अथवा सफाई का अर्थ केवल ऊपर की टीमटाम, आकर्षक श्रृंगार या बढ़िया फैशन बना लेना ही समझते हैं । कुछ लोगों की दृष्टि में बढ़िया वस्त्र, आभूषण, प्रसाधन सामग्री का उपयोग करना सफाई और सौन्दर्य का प्रमाण माना जाता है । कुछ लोग ऐसे भी हैं जो शरीर और वस्तुओं की अधिक सफाई सौन्दर्य की वृद्धि आदि बातों को सांसारिक प्रपंच मानकर इनकी उपेक्षा करने में ही महानता अनुभव करते हैं, पर ये सभी दृष्टिकोण एकांगी हैं । यह हो सकता है कि कुछ लोग विलास प्रियता अथवा श्रृंगार के भाव से ही स्वच्छता और सफाई करते हों, यह भी हो सकता है कि अन्य लोग अपना वैभव बड़प्पन प्रकट करने के दृष्टिकोण से सफाई पर ध्यान देते हों, पर इससे स्वच्छता की प्रवृत्ति को अनावश्यक या उपेक्षणीय नहीं माना जा सकता । वास्तव में स्वच्छता, सफ़ाई, पवित्रता एक ही उच्च्य मनोवृत्ति के रूप हैं और शरीर को स्वस्थ, मन को प्रसन्न तथा आत्मा को शान्त रखने में इनका बड़ा योग रहता है । बाह्य स्वच्छता और पवित्रता सो अन्तःकरण की पवित्रता की भी वृद्धि होती है और मन में अशुद्ध भावों का उदय होना स्वयमेव कम पड़ जाता है ।

यदि केवल बाहरी सुन्दरता और रंग–रूप को ही महत्त्वपूर्ण समझा जाय तो वह वेश्याओं में भी देखने में आता है, पर उनके जीवन

को कौन प्रशंसनीय कह सकता है ? इसी प्रकार स्वास्थ्य की निगाह से खूब मजबूत, तगड़े पहलवान जिनका चरित्र आदि उत्तम नहीं होता और बोलचाल में भी अक्खड़पन प्रकट होता है, वे कहाँ लोकप्रिय या सम्माननीय समझे जाते हैं ? इसी प्रकार जो लोग पूजा—पाठ में विशेष लगे रहते हैं और धार्मिक क्रिया काण्ड का पालन करते हैं, पर जिसमें परोपकार, विनय, सज्जनता आदि का अभाव होता है, वे कैसे जीवन में सफलता प्राप्त कर सकते हैं ? इसलिए हमको यह भली प्रकार समझ लेना चाहिए कि मानव जीवन के अनेक पहलू हैं, उन सभी की उन्नति करने से उनको शुद्ध तथा पवित्र बनाकर ही हम अपने जीवन को वास्तव में सुन्दर संसार के लिए उपयोगी महत्वपूर्ण बना सकते हैं ।

जिस मनुष्य ने अपना जीवन आलस्य अकर्मण्यता में व्यतीत किया है, जिसे उद्योग, परिश्रम अध्यवसाय की रुचि नहीं है, जिसमें हरामखोरी पराश्रित रहने की प्रवृत्ति ने जड़ जमा रखी है, वह कभी श्रेष्ठ और सुन्दर जीवन प्राप्त करने की आशा नहीं रख सकता । चाहे भगवान ने जन्म से उसे सुन्दर शरीर दिया हो तो भी अपने आचरणों और गन्दे मनोविकारों के द्वारा यह उसे वीभत्स बना लेगा । ऐसे लोग सब जगह प्रायः तिरस्कार लाँछना और अपमान ही पाते हैं और इसीलिए उनकी दृष्टि में तमाम दुनियाँ ही दुःखपूर्ण कुरूप, घृणा करने योग्य जान पड़ती है । फलतः वे स्वयं भी वैसे ही बनते चले जाते हैं । अन्तः और बाह्य मलीनता ऐसे लोगों में प्रत्यक्ष दिखलाई देती है और उसके कारण वे सर्वत्र उपेक्षणीय और निकृष्ट ही सिद्ध होते हैं । ये मनुष्य तामसिक श्रेणी के होते हैं ।

मुद्रक: युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा